

## अलीपुर गांव में शिक्षा : शिक्षक और विद्यार्थी

□ पदमा एम. सारंगपाणि

अनुवाद - देवयानी

शिक्षा की परिभाषाएं इसे एक उदात्त, अत्यन्त व्यापक और उत्कृष्ट प्रक्रिया के रूप में व्याख्यायित करती हैं। उन परिभाषाओं में रचा गया आदर्श सामान्यतः लगभग अलौकिक और लुभावना होता है या फिर अमूर्त और उलझा हुआ। जब आप जमीनी स्तर पर शिक्षा की किसी प्रक्रिया को गठित होते देखते हैं तो अक्सर आदर्श और चिन्तन छिन्न - भिन्न हो जाते हैं। प्रस्तुत लेख-शृंखला हमें कुछ ऐसा ही 'झटकेदार अनुभव' देती है। पिछले लेख में शिक्षा के 'छाया' अनुकरण में तब्दील होने और समूचे शैक्षिक उपक्रम के 'कोई आरामतलब नौकरी' पाकर 'बड़े आदमी' बनने के लक्ष्य में घट जाने का ब्यौरा था। प्रस्तुत लेख विद्यार्थी और अध्यापक के संबंधों की अनेक तर्हों को खोलता और विश्लेषित करता है।

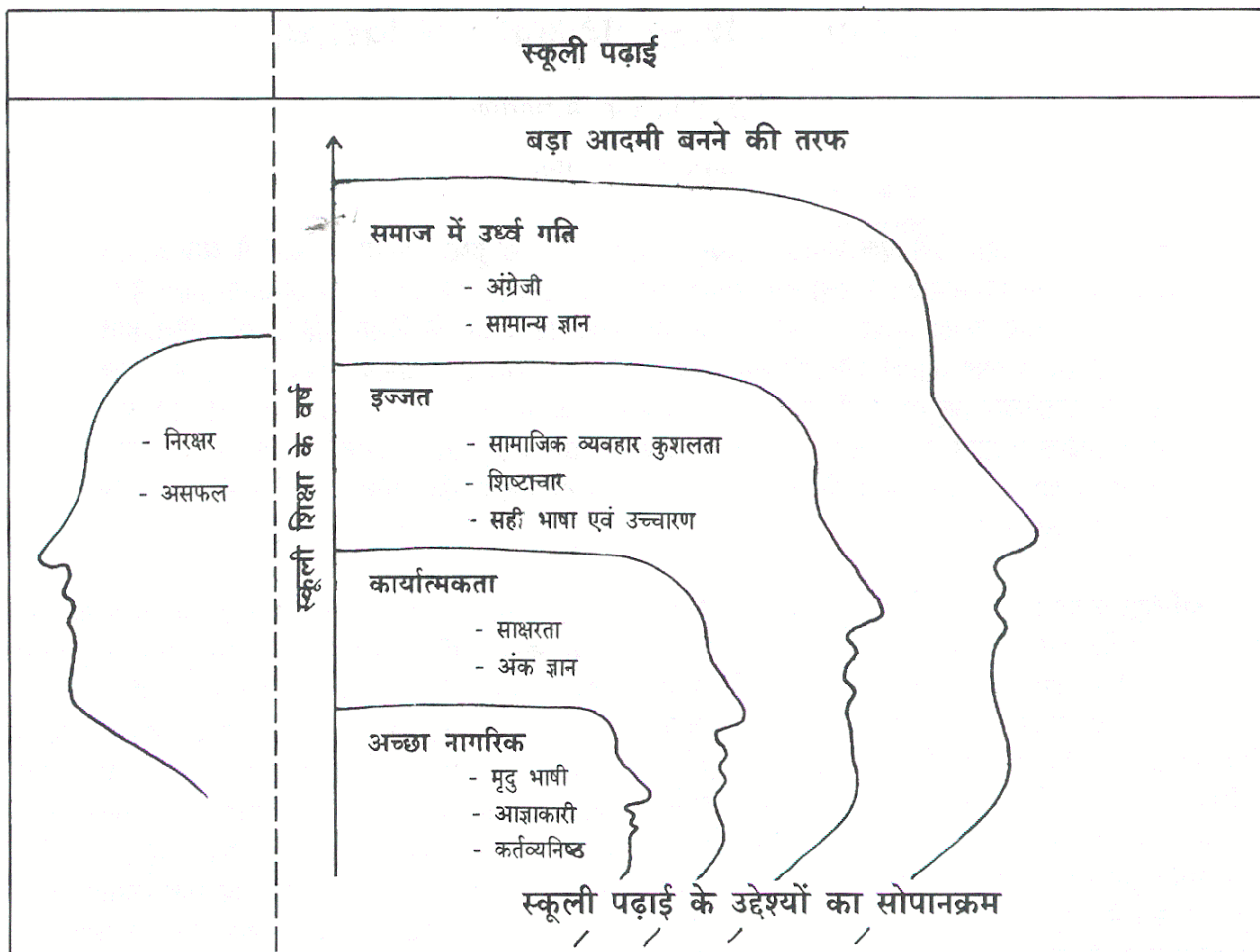
अलीपुर के प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा के बारे में अपने पिछले लेख में मैंने गांव का परिचय दिया और स्कूली शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में तथा इस शिक्षा के स्तर के बारे में बच्चों के विचार प्रस्तुत किया। शिक्षा के उद्देश्य के बारे में बच्चों के विचार गांव के लोकाचार को ही प्रतिबिम्बित करते हैं। गांव में सामाजिक बदलाव इसलिए आ रहा है क्योंकि यह शहर के पास है। इसके कारण गैर पारम्परिक रोजगारों के नए रूपों के माध्यम से रोजगारों में विविधता लाना संभव हुआ। शिक्षा को राजगार प्राप्त करने के महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा जाने लगा। स्कूली शिक्षा को 'नौकरी' हासिल करने के लिहाज से अनिवार्य माना गया। अशिक्षित या अनपढ़ व्यक्ति को नीची निगाह से एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखा जाने लगा जिसके पास सम्मानजनक नौकरी हासिल करने की सामर्थ्य नहीं है और जिसे रोजगार के पारम्परिक व असम्मानजनक, असुरक्षित क्षेत्रों में शारीरिक श्रम ही करते रहना होगा। स्कूली शिक्षा को भविष्य की नौकरी, विद्यार्थी के लिए समाज में ऊंचा रुतबा हासिल करने, परीक्षाएं पास करने व साक्षात्कार में अच्छा प्रभाव जमा पाने के लिए ही महत्वपूर्ण मान लिया गया। अगर कोई बेहतर नौकरी में जाना चाहता है और बड़ा आदमी बनना चाहता है तो उसके लिए अंग्रेजी तथा सामान्य ज्ञान को खासतौर से अधिक महत्वपूर्ण बताया गया। यहां दी गयी तालिका स्कूली शिक्षा के उद्देश्यों का सार एक सोपान-क्रम में प्रस्तुत करती है। (तालिका अगले पृष्ठ पर देखें।)

इस दूसरे आलेख में मैं स्कूलीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करूंगी। इसमें केन्द्रीय विषय शिक्षक, छात्र और उनके परस्पर संबंध होगा।

समाज में प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक की नौकरी को बहुत ऊंचा नहीं माना जाता, यह सम्मानजनक तो है लेकिन इसमें

वेतन तथा सामाजिक प्रभाव बहुत सीमित है। विद्यालयी पदानुक्रम में वह लगभग अंतिम छोर पर है, मात्र नर्सरी अध्यापक, चपरासी और सफाईकर्मी से ऊपर। मुझे अलीपुर के बच्चों के प्राथमिक विद्यालय में कदम रख अध्यापकों से मिलते ही इस स्थापित सामाजिक सत्य की झलक मिल गई। लगभग बिना किसी अपेक्षा के सभी महिला व पुरुष अध्यापकों ने अपने परिचय के साथ अपना वृत्तान्त संक्षेप में बताया। इसमें उनकी शैक्षिक योग्यता, मौजूदा नौकरी में आने के हालात का स्पष्टीकरण और इसके साथ खासतौर से यह बताना शामिल था कि उन्होंने और बेहतर नौकरी के लिए शिक्षा हासिल की थी। उदाहरण के तौर पर ऐसे कुछ साक्षात्कार प्रस्तुत हैं:

1. प्रार्थना सभा के दौरान दो युवक, जिनकी उम्र बीस साल के आसपास रही होगी मेरे पास आए और विद्यालय में मेरी मौजूदगी के बारे में उत्सुकता जताई। दोनों ने मुझे अपना परिचय दिया। दोनों पहली कक्षा को पढ़ाते हैं। एक ने बताया कि वह दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक है। वह सेना में था लेकिन जब वहां उसका तबादला घर से बहुत दूर दक्षिण में कहीं कर दिया गया तो उसने वह नौकरी छोड़ दी और बी.एड. की पढ़ाई पूरी कर ली। उस समय उसे वही एकमात्र रास्ता सूझा। लेकिन अब सब ठीक है, उसे लोगों से मिलने जुलने को बहुत समय मिल जाता है। उसने अपने साथी का परिचय दिया कि वह विज्ञान विषय से स्नातक है और बहुत अच्छी अंग्रेजी बोल सकता है। वह पास के कस्बे में विज्ञान की कक्षाओं का ट्यूटोरियल चलाता है और वही उसका असली काम है। यहां की नौकरी सिर्फ उसे सुबह भी व्यस्त रखती है।



- दूसरी कक्षा को पढ़ाने वाली युवती ने बताया कि उसने स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षा ली हुई है और इस नौकरी में वह खुद को व्यर्थ महसूस करती है। उसने अपनी मां की सलाह पर यह नौकरी कर ली, जो कि एक विद्यालय में प्रधानाचार्य है। उनका मानना है कि एक औरत के लिए यही एक मात्र ऐसी नौकरी है जिसमें वह घर को पूरा समय दे सकती है।
- पांचवी कक्षा के एक अध्यापक ने अपने परिचय में कहा कि वह एक ब्राह्मण है। उसने अपना जेबीटी प्रशिक्षण पूरा करने के साथ ही पढ़ाना शुरू कर दिया था। इसके साथ-साथ उसने स्वयंपाठी छात्र के रूप में स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई भी पूरी की। वह इस नौकरी को इसलिए जारी रखे हुए है कि इसमें उसे अपनी धार्मिक गतिविधियों के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है।

आप देख सकते हैं कि कैसे इन सभी अध्यापकों ने अपने परिचय में कुछ और सूचनाएं भी शामिल कर दीं ताकि उन्हें कुछ अधिक सम्मानजनक माना जा सके। विश्वविद्यालय से स्नातक होना, ऊंची जाति से संबंध होना, अंग्रेजी की जानकारी आदि जो प्राथमिक शिक्षा के काम से सीधे संबंध नहीं रखती हैं, लेकिन जो उच्च सामाजिक स्तर की सूचक हैं। इस नौकरी का एक मात्र सराहनीय पहलू वे इसमें प्राप्त सुविधा व सुरक्षा को मानते हैं। स्कूल में केवल दो अध्यापक, दो वरिष्ठ अध्यापक, ऐसे मिले जो मानते हैं कि पढ़ाना एक देश सेवा का कार्य है, ग्रामीण बच्चे अच्छे नागरिक बन सकें इसलिए वे उन्हें शिक्षित करते हैं। अन्यो के लिए यह नौकरी उनमें पर्याप्त आत्मसम्मान को भी नहीं जगा सकी।

### ‘दब्बू अधिनायक’

हालांकि विद्यालय के बाहर प्राथमिक विद्यालय अध्यापक को पर्याप्त सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिल पाती लेकिन विद्यालय के

दायरे में बच्चों और उनके अभिभावकों के लिए वही सब कुछ होता है। कृष्ण कुमार ने इन्हें 'दब्बू अधिनायक' की संज्ञा दी है।\* सर्वेसर्वा होने का यह भाव जिसका वे स्कूल में प्रयोग करते हैं, आखिर वह आता कहां से है ?

निश्चय ही पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में संस्थागत भूमिका अध्यापक को छात्र से ऊपर स्थापित करती है। पाठ्यक्रम में जो सामग्री दी गई है, वे उसे पहले से जानते हैं क्योंकि वे पहले ही स्कूल की प्रक्रिया से गुजर चुके हैं और उन्हें पढ़ाने का प्रशिक्षण भी प्राप्त है जबकि बच्चे अभी स्कूलिंग की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं, पाठ्यक्रम में मौजूद सामग्री को उन्हें अध्यापक के माध्यम से सिखाया जाता है। इस तरह संस्था अध्यापक को अधिकारी के रूप में स्थापित करती है। उसे पाठ्यक्रम में मौजूद विषयों (भाषा, विज्ञान इत्यादि) एवं पढ़ाने के तरीकों के, विशेषज्ञ एवं जानकार के रूप में पहचाना जाता है। (जैसे कि जानकार शिक्षित पुरुष/स्त्री पढ़ा लिखा आदमी? ज्ञानी?)। अलीपुर गांव में फील्डवर्क के दौरान मैंने पाया कि अध्यापक छात्र का संबंध और उससे संबंधित अधिकार यहां तक कि प्रशासनिक अथवा संस्थागत परिभाषाएं जितना बताती हैं उससे कहीं अधिक जटिल व गहरा है। अध्यापक की यह पहचान कई रूपों में स्थापित है और इसलिए गुरु-शिष्य के संबंध की छवि, संस्थागत छवि से अधिक भावात्मक हैसियत रखती है।

शिक्षक विद्यार्थी के संबंधों के बीच मैंने पांच स्तर और युग्म पाए। एक चर्चा के आधार पर उसकी सारणी भी बनाई।

शिक्षक	छात्र
वयस्क	बच्चा
माता/पिता	बच्चा
गुरु	शिष्य
आश्रयदाता	आश्रित
देशभक्त शहीद	नागरिक

शिक्षक तथा छात्र के बीच युग्म और स्तर बन जाते हैं।

### वयस्क-बच्चा

वयस्क और बच्चे के संबंध को शिक्षक-छात्र संबंध का आधार कहा जा सकता है। शिक्षक और छात्र दोनों ही के बीच स्कूल आने से पहले या स्कूल के बाहर यह संबंध विद्यमान रहता है, क्योंकि वे एक विस्तृत समाज के भी सदस्य हैं। गांव में, जैसा

\* देखें कृष्ण कुमार (1992) पॉलिटिकल एजेंडा ऑफ एजुकेशन (सेज नयी दिल्ली)

कि सभी भारतीय गांवों में होता है बड़ों के प्रति सम्मान बच्चों के लिए आधारभूत मूल्य ही नहीं, उनके 'स्वाभाविक आचरण' का भी अंग माना गया है। उम्र में बड़ा होना ही जो छोटे है उनसे आदर की अपेक्षा रखने के लिए पर्याप्त वजह है। सामाजिक पद प्रतिष्ठा को दरकिनार करते हुए बड़ों के प्रति आदर जताना हमेशा अच्छा माना जाता है। जान डिवी बताते हैं कि हम मूल्यों के बारे में बात करना तब शुरू करते हैं जब सामान्यतः वे व्यवहार में नहीं लाए जा रहे होते हैं। अलीपुर गांव में बड़ों के प्रति आदर के महत्व पर बहुधा कोई चर्चा नहीं की जाती। यह इस बात का संकेत है कि यह मूल्य पहले से ही स्वीकृत और विद्यमान है। कुछ स्थितियों में बच्चे इस मूल्य को चुनौती देते हैं। इससे यह भी पता चलता है कि यह मूल्य प्रचलित था।

लड़कियों के स्कूल में सफाईकर्मी अक्सर थोड़ी बड़ी लड़कियों को स्कूल के मैदान में बिखरी पत्तियां और कागज बीनने का काम सौंप देती थीं। लड़कियां यह पसंद नहीं करती थीं, ऐसे में सुबह के समय उससे बचने की कोशिश करती थीं या अनसुना कर देना चाहती थीं। लेकिन यदि वह नाम ले कर उन्हें आवाज दे तो वे उसे टाल नहीं सकती थीं। एक दिन कुछ लड़कियां मुझसे शिकायत कर रही थीं।

“हम यहां पढ़ने आती हैं या पत्तियां चुगने ?”

- आप उनसे यह क्यों नहीं पूछते ?”

“(अचंभे के साथ) हम ऐसा थोड़ी कह सकते हैं ?”  
(लड़कियों का स्कूल)।

हालांकि वे स्कूल में छात्राओं से पत्तियां बिनवाए जाने या कागज उठाने के काम कराने को ठीक नहीं मानती थीं, और इस मामले से संबद्ध वयस्क व्यक्ति एक निरक्षर कर्मचारी थी, लेकिन वे वयस्क को प्रश्न करने या उसे मना करने के बारे में सोच भी नहीं सकती। इस विचार से ही वे अचंभित रह गईं। यह एक तथ्य है कि अध्यापक वयस्क होता है और विद्यार्थी बच्चा, ऐसे में अपने आप ही अध्यापक छात्रा से सम्मान पाने का हकदार था। यह सामाजिक रिवाज स्कूलों में प्रविष्ट हो गया था।

बच्चे यदि बड़ों से प्रश्न रखना भी चाहें तो उन्हें मजाक का सहारा लेना पड़ता था। यही एकमात्र तरीका था जिससे उनकी आवाज को बड़ों द्वारा सुना जा सकता था, पर मजाक के रूप में होने के नाते, बच्चे गंभीर नतीजे से बच सकते थे। लेकिन गंभीरता से बचते हुए भी उनकी उस भंगिमा के कुछ मानी होते हैं -

अध्यापक को बाहर कुछ काम निपटाने के लिए आधा पौन घंटा कक्षा को छोड़ कर जाना था। बच्चों को अंक गणित के

कुछ सवाल हल करने के लिए दे दिए गए । अध्यापक ने अपने लौटने तक स्कूल की चपरासिन को कक्षा का ध्यान रखने को कह दिया। अब वह हाथ में छड़ी लेकर कक्षा में आयी और बच्चों को बिना शोर मचाए अपना काम करते रहने का निर्देश देने लगी । मनोज ने उन्हें चिढ़ाने के इरादे से मुलायम आवाज में कहा “आंटी मेरा काम तो जांच दो ।” (लड़कों का स्कूल)

सभी बच्चे जानते थे कि वह निरक्षर है और मनोज के काम की जांच नहीं कर सकती हैं । इस प्रकरण में मनोज मजाक की आड में इस तथ्य की तरफ ध्यान दिलाना चाहता है कि चपरासिन जो स्वयं निरक्षर है उसे इस तरह की जिम्मेदारी निभाने का दरअसल कोई अधिकार नहीं है । (इसकी बजाय कक्षा का मानीटर अध्यापक के स्थान पर इस जिम्मेदारी का निर्वाह करने का हकदार माना जा सकता है । बेशक वह एक बच्चा ही है लेकिन ज्यादा जानने के कारण वह अध्यापक न होने के वक्त कक्षा संभालने के लिए अधिक वैधता रखता है जो एक निरक्षर वयस्क के लिए मुश्किल है ।)

### माता/पिता - संतान

अध्यापक तथा छात्र के संबंध को वयस्क तथा बच्चे वाले पहलू के अलावा इसे माता/पिता और संतान के संबंध की तरह भी लिया जाता है । भारतीय पारिवारिक ढांचे में माता/पिता और खासतौर से पिता को बच्चे पर सर्वोच्च सत्ता माना जाता है। इस संबंध का अहसास सांस्कृतिक परम्परा, लोक जीवन तथा सामाजिक कर्मकांडों के जरिये भी कराया जाता है । इस सबके माध्यम से माता पिता का महत्व और उनके प्रति बच्चे के कर्तव्य बताए जाते हैं और इस तरह इस संबंध को किसी भी प्रकार के सवाल जवाब से शंकाओं से परे स्थापित कर दिया जाता है। समाजशास्त्री इस बात को रेखांकित करते हैं कि खासतौर से पिता की सत्ता एक अजनबी की सत्ता होती है जबकि मां एक आत्मीय व्यक्ति बनी रहती है । वह अपने स्वत्व को विसर्जित कर अथाह प्रेम और परिवार के लिए की जाने वाली छोटी बड़ी कुर्बानियों के जरिये स्वतः ही अपने बच्चे खास तौर से बेटे पर अपने अधिकार को कायम कर लेती है । अलीपुर के स्कूल के सभी बच्चे अपने पिता की निगाह में गलत साबित होने से बुरी तरह भयभीत रहते हैं। यहां तक कि उन्होंने बताया कि कई बार जबकि उनकी गलती नहीं थी तब भी उन्हें पिता के हाथों सजा के तौर पर बुरी तरह मार खानी पड़ी, तब भी वे उस पिटाई को अनुचित नहीं कह पाते। इसकी बजाय उन्होंने कहा कि यदि उन्हें पीटा भी गया तो वह उनके भले के लिए ही था ताकि वे गलत रास्ते पर नहीं जाएं । यह माना जाता है कि माता-पिता जो भी करते हैं अपने बच्चों के भले के लिए

ही करते हैं और बच्चों का यह परम कर्तव्य है कि वे अपने माता-पिता की इच्छा अनुसार काम करे, और उन्हें खुश रखें ।

अलीपुर स्कूल के शिक्षक अपनी तुलना बच्चों के माता पिता से करते थे और यह दावा करते थे कि माता पिता की तरह ही वे भी प्रत्येक कार्य बच्चों के भले के लिए ही करते हैं, अक्सर वे बच्चों को सभा में कहते थे, “गुरु माता पिता के समान होता है, हम जो भी कहते हैं या करते हैं तुम्हारे भले के लिए ही होता है ।” (प्रार्थना सभा) “तुम्हें रोजाना अपने माता-पिता और गुरु के चरण छूने चाहिये ।” (प्रार्थना सभा) इसके पीछे यही अपेक्षा रहती है कि बच्चे उनका भी उसी तरह आंख मूंद कर सम्मान करें जैसा वे अपने माता-पिता का करते हैं । अध्यापक बच्चों को माता-पिता की तरह ही अनुशासित रख सकता है या सजा दे सकता है । माता-पिता बच्चे के संबंध से समानता द्वारा शिक्षक के कार्यों को पवित्रता या वैधता प्राप्त हो जाती है ।

### गुरु-शिष्य

शिक्षक छात्र संबंध का एक और महत्वपूर्ण पहलू है गुरु-शिष्य संबंध । इसे वैदिक आश्रम की लगभग धार्मिक छवि से जोड़ा जाता है । यहां अध्यापक धार्मिक अथवा आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक के स्थान को प्रतिबिम्बित करता है जो ईश्वर अथवा मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग दिखा सकता है और उसका एक मात्र लक्ष्य मानव अस्तित्व के ‘श्रेष्ठतम पहलू’ को खोजना है । अलीपुर के अध्यापक गुरु-शिष्य के बारे में अपने विद्यार्थियों को संस्कृत श्लोक, प्राचीन पुस्तकों, लोक कथाओं तथा पौराणिक कथाओं के माध्यम से इन बातों का अहसास कराते थे । प्रार्थना सभा के दौरान अध्यापकों द्वारा अक्सर यह श्लोक कहा जाता था-

गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु,  
गुरु देवो महेश्वराय,  
गुरु साक्षात् परं ब्रह्म ,  
तस्मै श्री गुरुवे नमः ।”

वे इसकी व्याख्या इस तरह करते थे कि गुरु ईश्वर तुल्य है और ईश्वर की गुरु से तुलना की जा सकती है ।

भारतीय लोक में गुरु शिष्य परंपरा के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए इसकी माता और बच्चे के संबंध से तुलना की जाती है । मां और बच्चे के संबंध की तरह गुरु शिष्य परंपरा भी उतनी ही लोकप्रिय रही है और उतना ही सम्मान इस संबंध के प्रति व्यक्त किया जाता है । वैदिक समय से ही यह परम्परा बताई जाती है कि तब गुरु ऐसे साधु होते थे जिन्होंने समाज से सन्यास ले लिया होता था और जो मोक्ष की प्राप्ति के लिए आध्यात्म के मार्ग पर चल दिए थे । उपनिषदों में आश्रमवासी गुरु के चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण

करने के उल्लेख आते हैं। इस संबंध को पवित्र तथा शिक्षक और छात्र को गहरे जोड़ने वाला माना जाता है। लैनोंय\* बताते हैं कि भावनात्मक रूप से गुरु पर आश्रित होना वैदिक युग की देन नहीं है। इस तरह की प्रवृत्तियां कालांतर में भक्ति युग के दौरान पनपी। उस समय के गुरुओं ने वैदिक ज्ञान केवल संस्कृत जानने वालों तक ही सीमित रखने की परिपाटी को तोड़ा। उन्होंने आम आदमी की भाषा में प्रेम तथा भक्ति की महिमा बताई। इस समय गुरु और शिष्य का संबंध गहरे भावनात्मक जुड़ाव का संबंध होता गया जिसमें अपनी समस्त इच्छाओं तथा भक्ति को गुरु को समर्पित कर दिया जाता। इसी समय के बाद से गुरु का महत्व ज्ञान से भक्ति और शिक्षा से दीक्षा पर पदस्थापित हो गया। कृष्ण कुमार के अनुसार पूर्व औपनिवेशिक काल में सीधे-सादे ग्रामीण शिक्षक को भक्ति गुरु का यह पद विरासत में प्राप्त हो गया। इसने उसकी भूमिका और दर्जे को ऊपर उठा दिया और उसे समाज से अगाध श्रद्धा मिलने लगी।

अलीपुर के लड़कों के स्कूल में शिक्षक गुरु शिष्य की परंपरा की निरन्तरता का दावा करते हैं। लेकिन भक्ति गुरुओं की बजाय, जिन्होंने कि आम आदमी जिसके साथ वे रहते थे उसी की भाषा तथा संस्कारों के अनुरूप व्याख्याएं प्रदान की थी, वे अपनी इस परंपरा को वैदिक गुरुओं से जोड़ते हैं। वे संस्कृत भाषा, धार्मिक कर्मकांडों और उनसे जुड़ी पुस्तकों को अधिक महत्व देते थे। प्रातः कालीन सभा में गायत्री मंत्र, सूर्य नमस्कार और ध्यान कराते थे। वे बच्चों के मंत्रोच्चार तथा ध्यान को बिल्कुल ठीक तरीके से करने के लिए काफी सिरदर्दी झेलते थे। “गायत्री मंत्र का उच्चारण बिल्कुल पवित्र/साफ/और शुद्ध होना चाहिए। यह महामंत्र है।” (सभा) वे वैदिक ज्ञान और सत्य का विशिष्ट दर्जा होने का दावा करते हैं “क्योंकि हमारे वेद तथा शास्त्रों में जो लिखा गया है वह सत्य है। वह लोगों ने जैसा अनुभव किया वैसा ही लिखा गया है।” (सभा)

अध्यापक न सिर्फ गुरु के पद को ही वैदिक समय से जोड़ते थे। बल्कि स्कूलों के भी गुरुकुल की तरह होने का आदर्श रखते थे। वे आधुनिक समय में परम्पराओं के आम तौर पर हो रहे क्षय की आलोचना करते थे। वे बच्चों को गुरुकुल के शिष्यों की तरह रहने का उपदेश देते थे। “गुरुकुल में विद्यार्थी दो मिनिट के लिए पढ़ते हैं और फिर वे संस्कृत श्लोक सुनते हैं - त्वमेव माता च पिता (वह शुरु कर देता है और बीच में भूल जाता है। आसपास खड़े अध्यापक पूरा करने में मदद करते हैं।) वे जब गुरुजी पढ़ते तो बहुत ध्यान से सुनते हैं और तब उसे कंठस्थ कर लेते हैं।” (सभा) अब शिष्य के कार्यों, आचरण तथा व्यवहार को विद्यार्थी को अपने व्यक्तित्व में उतारना चाहिए। सच्चा और आदर्श छात्र वही है जो

अपने गुरु को पूज्य मानता है और जो पूरी तरह आज्ञाकारी होता है। आज्ञाकारी होना अपने आप में सर्वोत्तम गुण है और आज्ञाकारी विद्यार्थी को सफलता का मीठा तथा वांछित फल स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। यह बात बहुत भावपूर्ण ढंग से एक कहानी के माध्यम से अध्यापक बच्चों को बताते -

एक गुरु प्रतिदिन एक पत्थर की मूर्ति की पूजा करते थे और उसे (सांकेतिक रूप से) भोजन चढ़ाते थे। एक बार उन्हें कहीं दूर जाना था, उन्होंने अपने शिष्य को निर्देश दिया कि वह प्रतिदिन उस मूर्ति की पूजा करे और उसे भोग लगाना कभी न भूले। शिष्य ने गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। उसने मूर्ति के सामने भोजन रखा और उसके खाने की प्रतीक्षा करने लगा। वह अपने गुरु के वचन का पालन करने को प्रतिबद्ध था। मूर्ति ने जब भोजन नहीं किया तो पहले तो उसने याचना की कि वह कृपया इस भोजन को खा लें ताकि वह अपने गुरु के आदेश को निभा सके। तब भी जब मूर्ति ने भोजन नहीं किया तो उसने उसे डांटना और धमकाना शुरू कर दिया, यह कहते हुए कि खाइए नहीं तो मैं डंडे से मारूंगा। ईश्वर गुरु की आज्ञा के प्रति इस अबोध भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए और अंततः वे स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने उस भोजन को ग्रहण किया।” (लड़कों का स्कूल)

इस कहानी में गुरु के प्रति अंधभक्ति के परिणामस्वरूप अंततः शिष्य को ईश्वर का साक्षात् दर्शन रूपी पुरस्कार प्राप्त हो जाता है। यह एक ऐसा पुरस्कार था जिसकी कल्पना तो स्वयं गुरु ने भी नहीं की थी। गुरु के आदेश के प्रति इस किस्म की आज्ञाकारिता, यहां तक कि जिसमें अपने प्राणों की भी परवाह न रहे, गीता प्रेस प्रकाशन की कल्याण के शिक्षांक(1998 वार्षिक अंक) में आदर्श विद्यार्थी के बारे में इस किस्म की अनेक कहानियां संकलित हैं। इसमें एकलव्य, आरुणि तथा उपमन्यु शिष्यों को महिमा मंडित किया गया है। एकलव्य ने अपना अंगूठा गंवा दिया, आरुणि ने प्राण तो उपमन्यु ने दृष्टि ताकि वे अपने गुरु के आदेश के प्रति पूर्ण तथा अगाध श्रद्धा प्रदर्शित कर सकें। इन कहानियों में जिस बात पर जोर दिया गया है, वह यह कि विद्यार्थी को गुरु के आदेश का तर्क संगति अथवा उसमें निहित इरादे पर गौर किए बिना मात्र पालन करना चाहिए। अनेक उपनिषदों में शिष्यों की गाथाएं उपलब्ध हैं, जिसके द्वारा यह सिद्ध है कि सद्गुरु के समीप आत्मानिवेदन या शरणगति के द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है। जैसे - “श्वेतकेतु, नचिकेता, मैत्रेयी आदि को सत्यनिष्ठ रूप में गुरु समीप

\* आर. लैनोंय (1971) दी स्पीकिंग ट्री (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)

जाकर उनके आज्ञानुसार सेवा में तत्पर होने से सभी कुछ प्राप्त हुआ था।” (कल्याण/परम तत्त्वोपदेष्टा गुरु और जिज्ञासु शिष्य - पेज 260) पूर्ण आज्ञा पालन से किये कर्मों से ही सुपरिणाम प्राप्त होता है।

उल्लेखनीय है कि कल्याण में अच्छे विद्यार्थी की जिन विशेषताओं को बार-बार रेखांकित किया गया है वे गुरु के प्रति सम्मान तथा भक्ति से जुड़ी ही हैं। नचिकेता या मैत्रेयी जैसे शिष्यों या स्वतंत्र रूप से सवाल करने, अन्वेषण करने वाली विशेषताओं व अपने स्तर पर निर्णय लेने संबंधी कहानियों को यहां शामिल नहीं किया गया है।

### देशभक्त या शहीद के रूप में

सरकारी विद्यालय के अध्यापक स्वयं को एक अच्छे नागरिक के रूप में पेश करते थे जिसने देश और समाज के भले के लिए जीवन में अनेक बलिदान और त्याग किये। खासतौर से प्रौढ़ पुरुष शिक्षक यह मानते थे कि गंवार बच्चों के दिलों में अच्छे मूल्य स्थापित करना और बेहतर समाज बनाने के लिए अच्छी आदतें विकसित करना ही उनका कर्तव्य है। प्रतिदिन हम तुम्हें कुछ अच्छी बातें बताते हैं ताकि तुम अच्छी आदतें विकसित करो जो तुम्हें अच्छा नागरिक बनाएंगी।” हम यहां आते हैं और सारा समय पढ़ाने में लगाते हैं, क्यों? क्योंकि हम चाहते हैं कि जीवन में तुम्हें सफलता मिले।” (अध्यापक) बच्चे अध्यापक को सैनिक, पुलिस या वैज्ञानिक के समान ‘अच्छे नागरिक’ मानते थे। “शिक्षक अच्छा नागरिक होता है। देश के लिए काम करता है।” (देवेन्द्र)

यह भलाई और आत्मोसर्ग की बातें अध्यापक को बच्चों पर नैतिक अधिकार प्रदान कर देती है। उनके इस ‘अथाह’ त्याग के प्रति प्रशंसा के भाव का अभाव कृतघ्नता माना जाता था। अक्सर ग्रामीण समाज में पनपती इस तरह की भावनाओं कि प्राइवेट स्कूलों की तुलना में सरकारी विद्यालय कम काम करते हैं, के प्रति इसी तरह की बात कही जाती थी।

“हम तुम्हें रोज पढ़ाते हैं। चीजें अच्छी तरह समझाते हैं लेकिन तुम उन्हें याद नहीं करते। जहां छात्रों को दो-दो सौ रुपये फीस भरनी पड़ती है वहां भी यहां जैसे शिक्षक नहीं मिल सकते। मैं मान स्कूल गया था। वहां मैंने कुछ विद्यार्थियों से बातचीत की। हम उनसे बहुत अच्छी स्थिति में हैं। हिन्दी में गणित में सब में बेहतर। जबकि तुम सिर्फ दस पैसे देते हो। यहां शिक्षक बी.ए. बी.एड. हैं। हम कहते हैं तुम पढ़ो, पढ़ो- और तुम नहीं पढ़ते।” (अध्यापक, सभा)।

इस प्रकरण में हम पाते हैं कि सरकारी स्कूल का अध्यापक यह बता रहा है कि प्राइवेट स्कूल की तुलना में उसका ज्यादा नैतिक अधिकार है क्योंकि वह अधिक शैक्षिक योग्यता रखता है। पढ़ाई में सफलता की जिम्मेदारी भी वह बच्चों पर ही मढ़ता है कि वे ही अध्यापक की पूरी कोशिश के बावजूद पढ़ाई में मन नहीं लगाते।

### संरक्षक - आश्रित

सभी अध्यापक स्वयं को बच्चों की अपेक्षा अधिक सुसंस्कृत मानते थे क्योंकि वे शिक्षित थे जबकि बच्चे गंवार। वे मानते थे कि गंवार, अशिक्षित या अल्प शिक्षित माता-पिता स्कूल की गतिविधियों में दिलचस्पी भी नहीं ले सकते। यहां तक कि वे उनके इस किस्म के सवालों का भी उपहास बनाते थे कि उनका बच्चा नियमित विद्यालय आता है और दिया हुआ काम पूरा करता है या नहीं। वे उनके सवाल का एक आध शब्द में जवाब दे देते हैं और पीछे से तर्क देते हैं कि “इन्हें बोलने तक का शऊर नहीं है और जानना चाहते हैं कि पढ़ाई ठीक चल रही है या नहीं। अगर मैं बता भी दूं तो कौन सा उनकी समझ में आने वाला है। वे गृह कार्य तक में तो बच्चों की मदद कर नहीं सकते।” (अध्यापक) इस तरह की टिप्पणियों से वे घर और स्कूल के माहौल के बीच अंतर और घर की तुलना में स्कूल की श्रेष्ठता बताते थे। ऐसे हालात में परोपकारी, सामंती संरक्षक का संबंध आसानी से बनता है।

मैंने पाया कि आम तौर पर निरक्षर पर साक्षर की श्रेष्ठता के साथ ही यदि शिक्षक ब्राह्मण या जाट है, या शहर कालेज से पढ़ा हो अथवा अंग्रेजी जानता हो तो एक किस्म की सम्पन्नता की भावना भी उसमें विकसित हो जाती थी। इस तरह की सांस्कृतिक श्रेष्ठता की भावना सिर्फ विद्यार्थियों को ही निर्देशित करने में नहीं बल्कि उनके परिवार व रिश्तेदारों के प्रति भी नजर आती थी। ऐसे अध्यापक ‘अच्छी आदतों वाले’ या स्थानीय प्रतिस्पर्धाओं में अच्छा प्रदर्शन करने वाले बच्चों को अपनी तरफ से विशेष पुरस्कार भी प्रदान करते थे। वे प्रशंसा के लिए इक्के दुक्के बच्चों को नाम लेकर अलग बताते थे, और यदि बच्चा छोटी मानी जाने वाली जाति से है तो वे इस बात का जिक्र जरूर करते थे: ‘उसने अनुसूचित जाति/जन जाति का होते हुए भी अपनी श्रेष्ठता साबित की है।’ वे सिर्फ किसी बच्चे की सफलता की प्रशंसा नहीं करते बल्कि उनके प्रति खुद को संरक्षक की तरह पेश करते हैं।

छात्र और अध्यापक, दोनों की पहचान संस्थागत भूमिका के दायरे से बड़ी है। संस्थागत पहचान के अलावा जो अनेक और पहलू हैं जैसे - वयस्क, अभिभावक, गुरु, संरक्षक और देशभक्त यह सब पारंपरिक विरासत के रूप में ग्रामीण समाज में और सामाजिक परिवेश में पहले से मौजूद हैं। इन सबके बारे में वे अपनी सांस्कृतिक

विरासत दिन प्रतिदिन की बातों, मुहावरों, लोक कथाओं तथा परम्पराओं के जरिए जानते हैं। वयस्क या माता/पिता की जिस सत्ता का अनुभव बच्चे अपने परिवारों में भी निरन्तर करते हैं उसे स्कूल के सन्दर्भ में भी लागू कर दिया जाता है। अन्य स्वरूप अध्यापकों ने गढ़ लिये हैं। यह सभी स्वरूप संस्थागत संबंध की जड़ों को पोषित ही नहीं करते उन्हें और गहरे भी ले जाते हैं। अपने सांस्कृतिक परिवेश के कारण बच्चे स्वयं भी अध्यापक की सर्वोच्च सत्ता को स्वभाविक मानने लगते हैं, एक ऐसी सत्ता जो हमेशा सही है और जिसके बारे में कोई सवाल करना विद्यार्थी की सीमा से बाहर की बातें हैं।

### संप्रभुता या शक्ति

संप्रभुता को शक्ति की तुलना में उचित माना गया है। संप्रभुता जो कहती है उसे माना जाता है जबकि शक्ति से चीजों को सिर्फ थोपा जा सकता है। सत्ता बताती है कि यह तर्क संगत और वैध है जबकि शक्ति बल प्रयोग पर जोर देती है। अध्यापक के छात्रों के साथ संबंधों पर चर्चा में अब तक हमने यह देखा कि संप्रभुता कैसे स्थापित की जाती है। विद्यार्थी पर अध्यापक की संप्रभुता को स्थापित करने और इसे स्वाभाविक मनवाने के लिए अनेक तरीके अपनाये जाते हैं। लेकिन इसमें शक्ति का एक तत्व भी निहित रहता है जो संप्रभुता को व्यवस्थित करने में और उसके उपयोग में साथ साथ चलता है। अक्सर माना जाता है कि जब शक्ति के साथ वैधता जुड़ जाती है तो वह संप्रभुता में बदल जाती है। फुको का भी यही कहना है। अलीपुर स्कूल के शिक्षक की संप्रभुता में शारीरिक दण्ड और कड़ी नजर के प्रयोग जैसी शक्तियां शामिल हैं। छात्र के प्रति अध्यापक की क्या प्रतिक्रिया होगी इस बारे में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। यह अनिश्चितता भी अध्यापक की शक्ति का माध्यम है। अध्यापक बच्चों को बात करने की छूट भी दे सकता था और वह इन्हें चुप रखने के लिए बहुत सख्त रवैया भी अपना सकता था, यहां तक की अनुशासन भंग करने के लिए प्रताड़ित भी कर सकता था। अपने पास बैठे बच्चे से फुसफुसाकर बात करने को नजरअंदाज भी किया जा सकता था और इसे गंभीर अनुशासनहीनता भी माना जा सकता था। डांट फटकार या नाम लेकर बुलाना तो आम बात थी ही, पिटाई की धमकी, कक्षा से बाहर निकाल देना या प्राचार्य के पास भेज देना भी सजा के ही स्वरूप थे। यहां तक कि शारीरिक दंड के बहुत क्रूर रूप भी यहां देखे जा सकते थे। हाथ से, छड़ी से पिटाई, चिकोटी भरना, जोर का थप्पड़ लगाना, एक पैर पर दोनों हाथ ऊपर कर खड़ा कर देना, मुर्गा बना देना - जिसमें बच्चा घुटनों के नीचे से हाथ ले जाकर कान पकड़ कर पंजों के बल खड़ा रहे। आगे एक

ऐसा उदाहरण दिया जा रहा है जिसमें एक सवाल गलत हल करने पर अध्यापक ने बच्चे को शारीरिक दंड दिया।

अध्यापिका ने सवाल गलत हल करने वाले सब बच्चों को अपनी मेज के पास बुलाया। बारी-बारी सबकी कापियां उठा कर देखने लगी।

(ओमप्रकाश से) 'जोड़ तक नहीं लगा सकते?' (बांह पकड़ कर झिंझोड़ दिया)

(सचिन से) "गलत अंक लिख दिए" (गाल पर जोर से थप्पड़ लगा दिया)

(सुरजीत से) "जोड़ना नहीं आता" (बांह पकड़ कर झिंझोड़ दिया)

अनिल से "संख्याएं क्यों नहीं लिखीं" (पिटाई)

(राजकुमार से) "पांचवीं कक्षा में आ गए पर जोड़ना नहीं आया" (कान उमेठ कर उसके गाल पर चिकोटी भर दी)

अध्यापिका उन्हें दुबारा उन्हीं सवालों को हल करने भेज देती हैं। इस बार भी अनिल और ओम प्रकाश ने गलत हल निकालते हैं। अध्यापिका ने उन्हें मुर्गा बनाकर उठक-बैठक लगवाई और हल करने को कहा। अन्य बच्चों को कहती हैं, 'सभी अपने सवाल बहुत ध्यान से और सही-सही हल करेंगे। अगर किसी ने गलत किया तो डंडे से पिटाई होगी। सब अपना-अपना करेंगे कोई दूसरे की कापी में नहीं देखेगा। (लड़कों का स्कूल)

सजा किस रूप में या कितनी भयंकर हो सकती है यह पूरी तरह अध्यापक के विवेक या उसकी झक पर निर्भर करता, जिसका बच्चों को अनुमान नहीं होता। जबकि कोई भी संप्रभुता स्वविवेक का इस तरह इस्तेमाल नहीं कर सकती। वह सबके लिए समान रूप से निर्णय करती है, जिसके परिणामों का पहले से ही अनुमान किया जा सकता है। संप्रभुता ही नहीं, शक्ति का प्रयोग करने का एक परिणाम यह था कि हर छात्र दूसरे छात्र से अलग, एक वैयक्तिक इकाई का रूप लेता था और अध्यापक की प्रतिक्रिया हर एक के प्रति अलग हो सकती थी।

अध्यापक की आंख या नजर उसकी शक्ति के इस्तेमाल का एक और उपकरण थी। अध्यापक जब पुस्तक में नहीं देखते होते तो पूरी तरह भावहीन और सख्त निगाहों से बच्चों की तरफ देखते थे। एक के बाद एक छात्र पर वे नजर इस तरह घुमाते हैं मानों वे उनकी गतिविधियों की निगरानी कर रहे हैं। इसके पीछे जो भाव प्रदर्शित किया जाता था वह प्रत्येक बच्चे की गतिविधियों पर सूक्ष्म निगाह रखने का भाव था। ऐसी धारणा है कि अध्यापक को बच्चों पर कड़ी निगाह रखनी पड़ती है ताकि पता लगा सके कि उनके

दिमाग में क्या खुराफात चल रही है। “कई बच्चे सीधे बैठे रहते हैं लेकिन अन्दर ही अन्दर कोई गलत काम भी कर रहे होते हैं।” (अध्यापक, सभा)

अध्यापक की नजर भी विद्यार्थी को एक दूसरे से अलग और वैयक्तिक इकाई का अहसास देती है। यहां तक कि हर छात्र, अध्यापक की नजर का आशय समझ कर आने आप पर अनुशासन रखता था और दूसरे बच्चों पर भी नजर रखता था। वे कक्षा में एक दूसरे पर नजर रखते थे और अध्यापक से एक दूसरे की शिकायत करने में सुख का अनुभव करते थे। इस तरह अध्यापक की निगाह की ताकत न सिर्फ बच्चों में भी संस्थापित होती थी बल्कि बच्चे भी एक दूसरे के साथ शक्ति का संबंध स्थापित करने वाले तंत्र का हिस्सा बन जाते थे। वे न सिर्फ खुद पर बल्कि अपने साथियों पर भी निगाह रखते थे।

### अनुशासन और सीखना

“पिटाई के बिना बच्चे बेकार हो जायेंगे।”

- “लेकिन पिटाई क्यों?”

“क्योंकि बच्चे निकम्मे हैं। वे पढ़ना नहीं चाहते।”

बच्चे भी अध्यापकों से सहमत थे कि बच्चे खिलंदड़े और निकम्मे होते हैं। बच्चे नहीं जानते कि उनके लिए क्या अच्छा है, उन्हें अच्छे बच्चे बनाने के लिए अनुशासित रखना जरूरी है। वे मानते थे कि यह बात खासतौर से ज्यादा सच है। वे क्योंकि गंवार हैं इसलिए सिर्फ डंडे की भाषा ही समझ सकते हैं, प्यार भरे शब्द नहीं। यह माना गया है कि सभी अच्छे विद्यालयों में बहुत सख्त अनुशासन होता है।

“यहां पाबंदी है।”

“यहां पाबंदी क्यों है?”

“ताकि इसे अच्छा स्कूल बनाया जा सके।”

- क्या पाबंदियों के बिना यह अच्छा नहीं हो सकता?

“नहीं।”

एक दिन मैंने दो बच्चों के साथ चर्चा की कि स्कूल में अनुशासन क्यों महत्वपूर्ण है। उस दिन सुबह की सभा में उनके अध्यापक ने ब्रिटिश शासन की पाबंदियों के खिलाफ स्वाधीनता संग्राम के दौरान गदर पार्टी का गठन करने वाले लाला हरदयाल के बारे में बताया था। विपिन और अशोक दोनों बच्चे इस बात से सहमत थे कि स्कूल में बच्चों पर बहुत सख्त अनुशासन लागू है। मैंने सुझाव दिया कि वे भी लाला हरदयाल की तरह विद्रोह कर सकते हैं। विपिन खुश होकर इसके बारे में कल्पनाएं करने लगा, जबकि अशोक स्तब्ध रह गया। उसने कहा “फिर तो स्कूल-स्कूल नहीं रहेगा। बच्चे चिल्लाते देखे जाएंगे आलू ले लो, गोभी ले लो।” उसके अनुसार अगर अनुशासन नहीं हो तो

स्कूल सब्जी मण्डी जैसी हो जाएगी।

### अनुशासन व ज्ञान

यह संप्रभुता सिर्फ स्कूल में अनुशासन बनाए रखने व आज्ञा पालन कराने के लिए ही सक्रिय नहीं था। संप्रभुता के इस स्वरूप को ज्ञान तथा सीखने की प्रक्रिया के रूप में भी देखा जाने लगता है। शिक्षक-छात्र के संबंध को वयस्क-बच्चा, अभिभावक-बच्चा या गुरु - शिष्य के रूप में प्रस्तुत करना पुरानी शिक्षा-शास्त्रीय परम्पराओं (सिखाने-सीखने की परम्पराओं) से ही लिया गया है, जो कि समुदायों की सांस्कृतिक विरासत की अंग है। माता-पिता को बच्चे का पहला शिक्षक माना जाता है जो उन्हें भाषा, रोजमर्रा की बातें और नैतिक शिक्षा देते हैं। अनुभव के स्तर पर माता-पिता व अन्य वयस्क बच्चों से अधिक ज्ञानवान माने जाते हैं। सामान्यतः इस ज्ञान मीमांसात्मक पदानुक्रम में अधिक उम्र वाले लोगों को अपने से छोटों से अधिक अनुभवी माना जाता है, और इसलिए अनुभव के कारण ज्यादा जानकार भी। विभिन्न जातीय समुदायों के वयस्क लोग अपने से छोटों को शिक्षा शास्त्रीय संबंधों की तरह ही अपना शिल्प अथवा व्यावसायिक दक्षता का कार्य सिखाते हैं। यहां भी जो उम्र में बड़े होते हैं वे छोटों से अधिक जानकार होते हैं। इस तरह बड़ों अथवा माता पिता की बच्चों पर सत्ता का भी एक ज्ञान मीमांसात्मक चरित्र होता है। इसमें यह निहित है कि बड़ों की भूमिका के अभाव में बच्चा सीख नहीं सकता। इस प्रकार गुरु शिष्य के संबंध में शिक्षक का ज्ञान से संबंध छात्र की तुलना में अधिक होता है। यहां ज्ञान सिर्फ अनुभव से प्राप्त ही नहीं बल्कि पढ़ा या सीखा हुआ ज्ञान भी शामिल है। यह ज्ञान का एक ‘लिखित’ स्वरूप है जबकि इससे पहले ‘मौखिक’। लेकिन यहां भी सीखने के संदर्भ में गुरु के संबंध का महत्व तमाम प्रचलित सिद्धांतों व धारणाओं में व्यक्त होता रहा है।

इस तरह अध्यापक की सत्ता सिर्फ अनुशासन व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित नहीं है। बल्कि इसमें ज्ञान तथा सिखाने की प्रक्रिया में संप्रभुता का भाव भी निहित है। वे अपनी विशेषज्ञता तथा पारम्परिक शिक्षा शास्त्रीय भूमिका के जरिए छात्र तथा ज्ञान के बीच मध्यस्थ के रूप में इस सत्ता का उपयोग करते हैं। पारंपरिक रूप में ‘जानना’ एक ऐसी गतिविधि है जिसे पहले से जानकार शिक्षक अथवा वयस्क निर्देशित करता है। छात्र के लिए अध्यापक के साथ संबंध सीखने की प्रक्रिया का केन्द्र बन जाता है। अध्यापक अब ज्ञान के आधार पर वैद्यता के साथ विद्यार्थी के संबंध को नियंत्रित कर सकता है। अगले लेख में मैं इस नियंत्रण का विश्लेषण करूंगी जो न सिर्फ छात्र को काबू में रखता है, पर क्या सीखा जाएगा और कैसे, इन दोनों को परिभाषित करता है। ♦